International Journal of Advanced Research in Education and TechnologY(IJARETY)

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 7, Issue 4, July 2020 ||

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का शैक्षिक एवं सामाजिक चिंतन

SUSHEELA DEVI YADAV

ASSISTANT PROFESSOR, POLITICAL SCIENCE, V.N.P. GOVT. COLLEGE, SIWANA, BARMER, RAJASTHAN, INDIA

सार

उन्होंने महसूस किया कि सर्वांगीण सामाजिक विकास का लक्ष्य केवल उत्साह और लगन से अपना जीवन संघ को समर्पित करने से ही पूरा होगा। शांति भूषण लिखते हैं, "दीनदयाल हमेशा से अपना जीवन देश को समर्पित करना चाहते थे, क्योंकि उनका मानना था कि जब देश बंधन में था तब सरकारी नौकरी करने के बाद देश की सेवा संभव नहीं थी ।

परिचय

दीनदयाल जी की दृष्टि में भारतीय शिक्षा विषय पर विचार करते हुए कुछ प्रश्न स्वभावत: मन में उठते हैं जैसे किसी भी समाज की शिक्षा व्यवस्था अच्छी है या बुरी। इसकी कसौटी क्या है? शिक्षा को अच्छी या बुरी के रूप में जानने का प्रयत्न भी उचित है क्या? शिक्षा का लक्ष्य क्या होना चाहिए? क्या स्वतन्त्र भारत की शिक्षा व्यवस्था अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल रही है? शिक्षा कितनी वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए? शिक्षा में विषयानुराग कितना उचित या अनुचित है? ये अनेक प्रश्न हैं जिसका उत्तर हमारे शिक्षा निर्धारकों को खोजना है। भारत की स्वतंत्रता एक ऐसी सीमा रेखा है जो हमें आत्मालोचन के लिए ज्यादा प्रेरित करती है। आजादी के साथ जो शिक्षातंत्र हमें प्राप्त हुआ, वह मुख्यतः अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त शिक्षातंत्र था, लेकिन इस तंत्र में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा शांति निकेतन जैसे विश्वविद्यालय थे । आर्य समाज की गुरुकुल शिक्षा के अभिकेन्द्र भी थे तथा डी.ए.वी. शिक्षा संस्थाओं का वलय भी। थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रयोग भी थे और अनेक साधु प्रयत्नों के लघु एवं दीर्घ उपक्रम भी। इस विरासत के साथ स्वतंत्र भारत ने गत दशकों में अनेक प्रयोग किए। आज भी शिक्षा की दृष्टि से जहाँ हम पहुँचे हैं, हम सन्तुष्ट नहीं हैं। हमें लगता है कि शिक्षा-व्यवस्था हमारी आने वाली पीढ़ी को वैसा नहीं बना पा रही है, जैसा हम बनाना चाहते हैं।[1,2,3]

भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में पं. दीनदयाल जी के विचार उनकी पुस्तक 'राष्ट्रचितन' एवं पांचजन्य में उनके कुछ लेखों एवं आर्गेनाइजर में प्रकाशित उनके लेखों के अध्ययन से यह परिलक्षित होता है कि दीनदयाल जी एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था के समर्थक थे जो समयानुकूल होने के साथ देशानुकूल भी हो। उनके अनुसार व्यष्टि और समष्टि को जोड़ने वाला प्रथम सूत्र है- 'शिक्षा'। वे शिक्षा को समाज की जननी मानते हैं। उनके अनुसार नए घटकों को पुराने घटकों से अपने सम्बन्ध भान रहे तथा वे अपने पुराने घटकों की जीवन की अनुभूति को मानकर और समझकर आगे चले तो उस समूह को समाज नाम प्राप्त होता है। अर्थात एक के बाद एक मानव जब दूसरों को, जो प्राय: उसके बाद जन्मे हो, विभिन्न क्षेत्रों के अपने सम्पूर्ण अनुभव को अथवा उसके सारभूत अंश को विभिन्न उपायों द्वारा प्रदान या संसर्गित करता है तो इस प्रक्रिया में एक निरंतर गतिमान मानव समूह की सृष्टि होती है जिसे समाज कहते हैं। यदि शिक्षा न हो तो मानव समाज का जन्म ही न हो।

समाज में शिक्षा के स्थान की प्राथमिकता एवं गरिमा का बोध कराते हुए दीनदयाल जी कहते हैं – हमारे शास्त्रकारों के अनुसार यह ऋषि ऋण है जिसे चुकाना प्रत्येक का कर्तव्य है। जब हम भावी सन्तति की शिक्षा की व्यवस्था करते हैं तो हमारी उनके प्रति उपकार भावना नहीं रहती अपितु हमें जो कुछ धरोहर अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई है उसे आगे की पीढ़ी को सौंपकर उनके ऋण से उऋण होने की मनीषा रहती है। जॉन बुकन ने इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा है- "हम भूत के ऋण से उऋण हो सकते हैं यदि भविष्य को हम अपना ऋणी बनाएं।" दीनदयाल जी मानते हैं कि शिक्षा हर व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है समाज द्वारा इसकी व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षा का विक्रय समाज के लिए घातक होगा। अत: शिक्षा सुनिश्चित और नि: शुल्क होनी चाहिए। इस सन्दर्भ में वह लिखते हैं कि बच्चे को शिक्षा देना समाज के अपने हित में है। जन्म से मानव पशुवत पैदा होता है। शिक्षा व संस्कार से वह समाज का अभिन्न घटक बनता है। जो काम समाज के अपने हित में हो उसके लिए शुल्क लिया जाए यह तो उल्टी बात है। कल्पना करें कि भविष्य में शिक्षा शुल्क का बहिष्कार करके अथवा उसे देने में असमर्थ होने के करण बच्चे पढ़ना बन्द कर दें तो क्या समाज इस स्थिति को सहन कर पायेगा। पेड़ लगाने और सीचने से पेड़ के फलने पर हमें फल मिलेंगे ही। शिक्षा भी इसी प्रकार विनियोजित है। व्यक्ति शिक्षित होकर समाज के लिए काम करेगा ही; किन्तु जो व्यवस्था बचपन से ही हमें व्यक्तिवादी बनाती हो उससे समाज की अवहेलना करने वाले निकले तो आश्चर्य ही क्या? भारत में 1947 से पहले राज्यों में कहीं भी शिक्षा के लिए शुल्क नहीं लिया जाता था। उच्चतम श्रेणी तक शिक्षा निशुल्क थी। गुरुकुलों में तो भोजन व रहने की व्यवस्था भी आश्रम में ही होती थी। केवल भिक्षा मांगने

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 7, Issue 4, July 2020 ||

के लिए ब्रह्मचारी समाज में जाता था। कोई भी गृहस्थ ब्रह्मचारी को खाली हाथ नहीं लौटाता था अर्थात समाज द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी।

वर्तमान की बदली हुई परिस्थिति में जब हमनें लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की है, इस सामाजिक दायित्व को वहन करने का दायित्व 'राज्य' का है। अपनी पुस्तक 'सिद्धांत और नीति' में दीनदयाल जी लिखते हैं कि "प्रजा को शिक्षा की उपेक्षा न करने देना, शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में उसकी सहायता करना, प्रत्येक स्थान पर विद्वान गुरुओं का प्राचुर्य रखना, देश-काल निमित्तों को शिक्षा के अनुकूल रखना, स्थान-स्थान पर शिक्षाश्रमों की व्यवस्था करना, सर्वत: उनके उत्साह को बढाए रखना राज्य के परम्परागत कर्तव्य हैं।" राज्य को शिक्षा के प्रति उत्तरदायी मानते हुए भी उपाध्याय जी शिक्षा के सरकारीकरण के विरुद्ध हैं। वे कहते हैं- बेशक एक कल्याणकारी राज्य में बच्चों की शिक्षा की मूल जिम्मेदारी सरकार की ही होती है, लेकिन हमें शिक्षा के सरकारीकरण से बचना चाहिए। वे शैक्षिक स्वायत्तता का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार – "शिक्षा का समय राज्य द्वारा होने के उपरांत भी सरकारीकरण नहीं होना चाहिए। प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा संस्थाओं का प्रबंध करने के लिए शिक्षकों तथा शिक्षाविदों के स्वायत्त निकाय होने चाहिए। सरकार के विभाग के रूप में उनका चलना ठीक नहीं। सरकारी और गैर-सरकारी शिक्षा संस्थाओं का भेद समाप्त कर देना चाहिए। सभी क्षेत्रों के शिक्षकों के वेतन क्रम व अन्य सुविधाएं ऐसी हो जिससे योग्य व्यक्ति शिक्षा के क्षेत्र में आने में संकोच न करें। शिक्षा संस्थाओं को मैनेजरों अथवा प्रबन्ध समिति की निजी सम्पत्ति बनने देना उचित नहीं।"

"स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर निजी सम्पत्ति बनाने की प्रवृत्ति की ओर से भी सावधान रहना आवश्यक है। अतःस्वायत्तता का अर्थ शिक्षा की दुकानदारी न होकर संविधानत: सुपरिभाषित स्वायत्त राष्ट्रीय निकाय के अन्तर्गत शिक्षा व्यवस्था का होना है।" यहीं वस्तुत: दीनदयाल जी का अभिप्रेत था। इसी प्रकार वे शिक्षा के दोहरे ढाँचे, जिसमें 'पब्लिक स्कूल' व सरकारी अथवा निजी स्कूल की व्यवस्था होती है, के भी विरुद्ध हैं। वे पब्लिक स्कूलों को 'राष्ट्रीयतानाशक' प्रभाव छोड़ने वाले विद्यालय के रूप में वर्णित करते हुए कहते हैं- "शिक्षा समाज में भेद निर्माण करने वाली न होकर एकात्मभाव निर्माण करने वाली हो, भारत के 'पब्लिक स्कूल' इस उद्देश्य के प्रतिकूल हैं। आवश्यकता है, सभी शिक्षण संस्थाओं का स्तर ऊंचा उठाया जाए।"[4,5,6]

उनके विचार में समाज व राज्य संस्था के द्वारा जहाँ शिक्षा का योग्य नियमन होना चाहिए, वहीं शिक्षातत्व पर बाहरी साम्राज्यवादी ताकतें हमारे समाज को अस्वस्थ न करें, इसका ध्यान रखना भी जरूरी है। इस दृष्टि से वे भारत में ऐसी संस्थाओं को खतरनाक मानते हैं। भारत में बहुत सी शिक्षा संस्थाएं ईसाई मिशनों के द्वारा चलाई जा रही है। बहुधा ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा चलाई गयी शिक्षा संस्थाओं एवं शिक्षा क्षेत्र में उनके प्रयत्नों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की जाती है। इतना ही नहीं आज के अनेक पढे-लिखे व्यक्ति तथा देशभक्त कहे जाने वाले भारतीय संस्कृति के प्रेमी भी अपने बच्चों को शिक्षा के लिए इन ईसाई स्कूलों में भेजते हैं। किसी भी बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप एवं प्रभाव नहीं सहन कर सकते। आर्थिक क्षेत्र में भी बाहरी सहायता व पूंजी भय का कारण बन जाती है। शिक्षा के क्षेत्र में विदेशियों को अधिकार देना कहाँ तक उचित है? अपरिपक्व मस्तिष्क पर विदेशी शक्तियों को प्रभाव डालने की अनुमति देना जैसे जड़ को काटने की स्वतन्त्रता देना ही है। दीनदयाल जी मानते हैं कि शिक्षा केवल शालेय उपक्रम मात्र नहीं है वरन एक सम्पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है। शालेय शिक्षा उसका महत्वपूर्ण भाग होते हुए भी केवल शालेय शिक्षा से समाज सर्वांग रूप से सुरक्षित नहीं हो सकता। अतः वे एक शिक्षकत्रयी का वर्णन करते है। उनकी मान्यता है कि शिक्षा के व्यापक अर्थों में समाज का प्रत्येक घटक ही शिक्षक है। अतः प्रथम शिक्षक है- समाज, द्वितीय शालेय अध्यापक एवं तृतीय है- व्यक्ति स्वयं। इस शिक्षकत्रयी को भारतीय शास्त्रकारों नें निम्न वाक्यों में प्रतिबिंबित किया है –

1. माता प्रथमा गुरु:

2 आचार्य देवो भव:

3 आत्मदीपो भव:

उन तीनों शिक्षकों के शिक्षा देने के अलग अलग माध्यम है, प्रथम-संस्कार, द्वितीय-अध्यापन व तृतीय-स्वाध्याय।

माता प्रथमा गुरू (संस्कार)

संस्कार ही शिक्षा का प्रथम माध्यम है जो व्यक्ति समाज द्वारा ग्रहण करता है। संस्कार की दृष्टि से समाज का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षक है। व्यक्ति सबसे पहले जिस सामाजिक घटक के सम्पर्क में आता है वह माता है। अत: कहा गया कि माता प्रथमा गुरुः। फिर व्यक्ति समाज के अन्य घटकों के सम्पर्क में आता है। एक सामाजिक परिवेश रहता है जिसका नवजात एवं विकसित हो रहे बालक पर अनजाने में ही प्रभाव होता रहता है। इसी प्रभाव को उपाध्याय जी संस्कार कहते हैं। माता-पिता, परिजन = पुरजन-गुरुजन, अग्रपाठी, सहपाठी, समाज के नेता और अधिष्ठाता। ये सभी विभिन्न प्रकार के संस्कार निरन्तर डालते रहते हैं। अत: समाज का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षक है। उसका यह सामाजिक दायित्व है कि वह अपने व्यवहार से सत्संस्कारी परिवेश का समाज निर्माण करे। इस दायित्व

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 7, Issue 4, July 2020 ||

बोध से शून्य होकर समाज यदि केवल शालेय शिक्षा व शिक्षक पर ही आश्रित होगा तो उसकी प्रगति नितान्त संदिग्ध मानी जायेगी। शिक्षा में सर्वजन सहभागिता आवश्यक है। यह केवल कुछ विशेषज्ञों मात्र का विषय नहीं है। उसे शैक्षिक लोकतंत्र की भी संज्ञा दी जा सकती है।

आचार्य देवो भव (अध्यापन)

शिक्षालयों की व्यवस्था कर औपचारिक अध्यापन के माध्यम से शिक्षा देना एक सर्वमान्य शैक्षिक तरीका है। अक्षर ज्ञान व कुछ पाठ्यक्रम के माध्यम से हम व्यक्ति को शिक्षित करते हैं। यह औपचारिक शिक्षा निर्जीव कर्मकाण्ड न बन जाय, अत: आवश्यक है कि शिक्षा के व्यापक अर्थों को समझने वाले व्यक्ति अध्यापक बनें तथा समाज शिक्षक को सर्वाधिक सम्मानित पद के रूप में स्वीकार करे। शिक्षक की वर्तमान स्थिति व अपने सुझावों को प्रतिपादित करने वाला एक वर्णनात्मक लेख दीनदयाल जी ने 'आर्गेनाइजर' में 17 सितम्बर 1962 को लिखा। उसमें उपाध्याय जी ने अपने स्नेही शालेय अध्यापक से अध्यापक बनने की अपनी इच्छा जताई तो उनके उन शुभेच्छु अध्यापक ने जो कुछ कहा उसका वर्णन करते हुए उपाध्याय जी लिखते हैं कि "वह चुप हो गये, उनके चेहरे पर ठंडी उदासी छा गयी, फिर उन्होंने पर्याप्त कड़वाहट के साथ कहा- कृपा कर तुम कुछ भी कर लो। चाहे तुम मोची बन जाओ, चाहे सड़क के किनारे बैठ कर और कर जूते गाँठने का काम करो लेकिन इस गंदले मास्टरजी के काम को मत अपनाओ। अध्यापक बनने से तुम्हारी इस लोक व परलोक, दोनों लोकों के जीवन की समस्त सम्भावनाएं निश्चित रूप से समाप्त हो जायेंगी।" अपने शुभेच्छु पूर्वाध्यापक की बात न मानते हुए उपाध्याय ने टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज में प्रवेश लिया तथा वहाँ के अनुभव को अपने लेख में इस प्रकार वर्णित करते हैं – "यथासमय मैंने प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रवेश लिया। मैने वहाँ देखा कि शिक्षक का यह उदात्त कार्य आज आदर्शवादी व सेवाभावी लोगों को आकर्षित नहीं कर पा रहा है। केवल वह लोग जो अन्यत्र स्थान पाने में असमर्थ रह जाते हैं अध्यापक बन जाते हैं। आई.सी.एस. से लेकर नायब तहसीलदार तक की विभिन्न परीक्षाओं में ये प्रशिक्षणार्थी बैठते थे, लेकिन इनमें जो अनुत्तीर्ण हो जाते, वे ही अध्यापक बनने की सोचते थे। जॉनसन ने कहा है- शेष सब धन्धों से बचे हुए अधम जनों का धन्धा राजनीति है। वस्तुत: भारत में अध्यापन कुण्ठाग्रस्त लोगों के लिए बचा हुआ धन्धा है। इस प्रकार से यह आत्महत्या का पूर्व सोपान है।" जिस शिक्षक के हमारी प्राचीन समाज व्यवस्था ने 'आचार्य देवो भव' कहा, उसके आभामण्डल का यह अपखण्डन बहुत ही चिन्ताजनक है। यदि हमें अपने समाज को सही अर्थों में सुशिक्षित करना है तो अध्यापक की गरिमा को पुनः स्थापित करना होगा।

आत्मदीपो भव (स्वाध्याय)

समाज की शिक्षक अवस्था तथा औपचारिक अध्यापन व्यवस्था के बाद व्यक्ति स्वयं ही अपना शिक्षक होता है। स्वाध्याय मनुष्य का स्वयं अध्यापन है। पठन, मनन और चिन्तन के सहारे मनुष्य ज्ञान को आत्मसात करता है। बिना स्वाध्याय के न तो प्राप्त ज्ञान टिकता है न ही बढ़ता है। स्वाध्याय के बिना ज्ञान को जीवन का अंग बनाकर तेजस्वी बनाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अत: 'स्वाध्यायन्मा प्रमद:' (स्वाध्याय में आलस्य मत करो), यह कुलपति का स्नातक को दीक्षान्त के अवसर पर आदेश रहता है। पुस्तकालय आदि की व्यवस्था स्वाध्याय के लिए आवश्यक है। उपाध्याय जी समाज में शिक्षामय वातावरण के लिए घर व नगर में पुस्तकालयों की स्थापना तथा पठन-पाठन का वातावरण बनाने पर विशेष बल देते हैं। इसके बिना शालेय शिक्षा का भी वांछित टिकाव एवं विकास संभव नहीं है। शालेय शिक्षा अकेली ही मनुष्य का निर्माण नहीं करती। संस्कार और अध्यापन का बहुत सा ऐसा क्षेत्र है जो शालेय क्षेत्र के बाहर है। यदि इन दोनो क्षेत्रों में विरोध रहा तो विद्यार्थी के जीवन में एक अंतर्द्वन्द्व उपस्थित हो जाता है। एक समन्वित, एकीकृत, सर्वांगपूर्ण अखण्ड व्यक्तित्व का विकास होने के स्थान पर उसकी प्रकृति में विभक्त निष्ठाओं का समावेश हो जाता है। समाज और उसके बीच एक खाई पड़ जाती है। आज केवल औपचारिक शिक्षा पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है, तथा वांछित परिणामों को न प्राप्त कर सकने की कुंठा के कारण शिक्षा पद्धति की निन्दा तथा परस्पर आरोप-प्रत्यारोप का वातावरण बन रहा है। उपाध्याय जी इसे समाज की अस्वस्थ अवस्था का परिचायक मानते हैं। औपचारिक शिक्षा तो संस्कार एवं स्वाध्याय के बीच की कड़ी है। शिक्षा की सर्वांगपूर्णता की प्रथम शर्त है- 'संस्कारक्षम समाज' अर्थात प्रत्येक व्यक्ति में शिक्षा के प्रति उत्तरदायित्व की भावना आवश्यक है। परिवार, हाट-बाजार, खेत-खलिहान ये सब शिक्षालय के ही रूप है। समाज में यह चेतना उत्पन्न करना सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक आन्दोलनों संगठनों व नेताओं का कार्य है। इस कार्य को किए बिना केवल सरकारी माध्यम से शिक्षा की सर्वांगपूर्ण व्यवस्था की कल्पना करना सर्वथा अव्यवहार्य है। समन्वित शिक्षकत्रयी ही समाज में सर्वांगपूर्ण शिक्षा नीति की प्रत्याभूति है। इसी क्रम में उपाध्याय जी शिक्षा के लिए स्वभाषा की अपरिहार्यता को भी आवश्यक बताते हैं।[7,8,9]

विचार-विमर्श

उपाध्याय जी के सम्पूर्ण वैचारिक प्रतिपादन में शिक्षा व संस्कार व्यवस्था का सर्वाधिक महत्व है। वे समाज के चतुर्विध पुरुषार्थों की प्राप्ति की मूलभूत आधारशिला शिक्षा को ही मानते हैं। उस सन्दर्भ में किसी बाद व व्यवस्था विशेष के आग्रह को उपाध्याय जी असंगत मानते हैं। शिक्षा से प्राप्त सामर्थ्य समाज को सदैव सही रास्ता खोज लेने के लिए सक्षम बनाता है। अत: राजनीतिक व आर्थिक कारणों से योजनाकार जब शिक्षा की अवहेलना करते हैं तब उपाध्याय जी इसे अनुचित करार देते हैं। पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा मद में व्यय की कटौती की आलोचना करते हुए उपाध्याय जी ने कहा था कि "चौथी पंचवर्षीय योजना की सबसे कमजोर कड़ी है, 'शिक्षा' इस मद में 1965-66 में 180.13 करोड़ रुपये की जगह अब केवल 98.38 करोड़ रूपये का प्रावधान है। शिक्षा का क्रम तो अबाध रूप से चलना चाहिए। उसे यदि बीच में तोड़ दिया गया या कमजोर कर दिया गया तो आगे जोड़ना बहुत कठिन हो जायेगा।"

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 7, Issue 4, July 2020 ||

इस प्रकार उपाध्याय जी अपने देश-काल के अनुरूप भारतीय शिक्षा के वैदिक आदर्श को स्थापित करने के पक्षधर दिखाई देते हैं। सब दिशाओं से मिले शुभ ज्ञान, यह हमारे दर्शन का दिशाबोधक सिद्धान्त है। लेकिन हमें यह भी तय करना होगा कि हमारे देश व समाज के हित में हम क्या ग्रहण करें। यह हमारा अधिकार ही नहीं अपितु वांछनीय भी है।

दीनदयाल उपाध्याय एक भारतीय दार्शनिक, अर्थशास्त्री और राजनीतिक नेता थे, जिन्होंने अपने विभिन्न योगदानों के माध्यम से भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव डाला। उनके सबसे महत्वपूर्ण योगदानों में से एक उनकी शैक्षिक विचारधारा थी, जिसके बारे में उनका मानना था कि यह भारतीय समाज को बदल सकती है और इसकी वास्तविक क्षमता को प्राप्त करने में मदद कर सकती है। दीनदयाल उपाध्याय की शैक्षिक विचारधारा और वर्तमान भारतीय परिवेश में इसकी प्रासंगिकता। अध्ययन उपाध्याय के जीवन और योगदान के अवलोकन के साथ शुरू होता है, उसके बाद उनके शैक्षिक दर्शन का विश्लेषण होता है, जिसमें व्यक्ति के समग्र विकास, सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा देने और आधुनिक और पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों के एकीकरण पर जोर दिया जाता है। वर्तमान समय में भारतीय शिक्षा प्रणाली के सामने आने वाली चुनौतियाँ, जैसे डिजिटल डिवाइड, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच की कमी और व्यावसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता। अध्ययन का तर्क है कि उपाध्याय का शैक्षिक दर्शन मूल्य-आधारित शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा देकर इन चुनौतियों से निपटने के लिए एक ढांचा प्रदान करता है, जो व्यक्ति के समग्र विकास को प्राथमिकता देता है और उन्हें आधुनिक दुनिया में फलने-फूलने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्रदान करता है।

परिणाम

भारतीय समाज एवं राष्ट्र को सुखी, संपन्न एवं मंगलकारी बनाने के निमित्त 'एकात्म मानव-दर्शन' व 'अन्त्योदय' की अद्भुत संकल्पना देने वाले पंडित दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र-निर्माता एवं समाज-सुधारक महाव्यक्तित्व थे। आज की भारतीय जनता पार्टी उन्हीं के सिद्धान्तों को अग्रसर करते हुए उन्नत, सशक्त एवं विकसित भारत को आकार दे रही है। उन्होंने भारत के जन-मन-गण को गहराई में आत्मसात करते हुए न केवल वैचारिक क्रांति की बल्कि व्यक्ति-क्रांति के भी प्रेरक बने। उनके दर्शन में आज भारत की संस्कृति और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के साथ-साथ मानव को केंद्र-बिंदु में रखकर ही राष्ट्र एवं समाज स्थापना की प्रेरणा मिलती है। सहृदयता, बुद्धिमता, सक्रियता एवं अध्यवसायी वृत्ति वाले पंडित उपाध्याय एक व्यक्ति नहीं, अपितु एक विचार, एक संस्था और जीवन-शैली हैं। भारत और भारतीयता उनके जीवन और चिंतन का आवृत्त है। राष्ट्रसेवा को सर्वोपरि मानने वाले और राष्ट्र एवं समाज के प्रति आजीवन समर्पित रहने वाले पंडितजी ने अपने मौलिक चिंतन से राष्ट्र-जीवन को प्रेरित और प्रभावित किया। पंडित उपाध्याय 'राष्ट्रधर्म प्रकाशन' के संस्थापक एवं 'राष्ट्रधर्म', 'पांचजन्य', 'दैनिक स्वदेश' व 'तरुण भारत' जैसी राष्ट्रवादी पत्रिकाओं के प्रेरणास्रोत भी रहे हैं। मानव एकता जैसी विचारधारा और राष्ट्रवादी चिंतन के प्रेरक, राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ व राष्ट्रीय जनसंघ के संस्थापकों में शामिल पंडित उपाध्याय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रणेता भारत के सबसे तेजस्वी एवं यशस्वी चिंतकों में से एक रहे हैं।

पंडित दीनदयालजी कल भी प्रासंगिक थे, आज भी प्रासंगिक हैं, और आगे भी प्रासंगिक रहेंगे। उनके अमूल्य विचार एवं दर्शन न केवल भारत बल्कि विश्व की मानव सभ्यता और संस्कृति के लिए एक पाथेय है, एक नयी समाज-व्यवस्था का प्रेरक है। वे बीसवीं सदी के वैचारिक युगपुरुष थे, वे अजातशत्रु थे। एक प्रखर अर्थचिन्तक, शिक्षाविद्, साहित्यकार, उत्कृष्ट संगठनकर्ता तथा एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी ऐसे अजातशत्रु राष्ट्र-निर्माता व्यक्तित्व थे जिन्होंने जीवनपर्यन्त अपनी व्यक्तिगत ईमानदारी, सादगी व सत्यनिष्ठा को महत्त्व दिया। उनकी मान्यता थी कि हिन्दू कोई धर्म या संप्रदाय नहीं, बल्कि भारत की राष्ट्रीय संस्कृति हैं। उनका जन्म 25 सितम्बर 1916 में मथुरा जिले के छोटे से गांव 'नगला चंद्रभान' में हुआ था। तीन वर्ष की उम्र में आपकी माताजी का तथा 7 वर्ष की कोमल उम्र में आपके पिताजी का देहान्त हो गया। वह माता-पिता के प्यार से वंचित हो गये। किन्तु उन्होंने अपने असहनीय दर्द की दिशा को बहुत ही सहजता, सरलता तथा सहिष्णुता से लोक कल्याण की ओर मोड़ दिया। आप जीवनपर्यंत परम सत्य की खोज में लगे रहे और लोक कल्याण की भावना से ओतप्रोत जीवन्त साहित्य की रचना की। उनका मानना था कि भारत की आत्मा को समझना है तो उसे राजनीति अथवा अर्थ-नीति के चश्मे से न देखकर सांस्कृतिक दृष्टिकोण से ही देखना होगा। भारतीयता की अभिव्यक्ति राजनीति के द्वारा न होकर उसकी संस्कृति के द्वारा ही होगी। समाज में जो लोग धर्म को बेहद संकुचित दृष्टि से देखते और समझते हैं तथा उसी के अनुकूल व्यवहार करते हैं, उनके लिये पंडित उपाध्याय की दृष्टि को समझना और भी जरूरी हो जाता है।

पं. दीनदयालजी भारतीय जनता पार्टी के लिए वैचारिक मार्गदर्शन और नैतिक प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। वे मजहब और संप्रदाय के आधार पर भारतीय संस्कृति का विभाजन करने वालों को देश के विभाजन का जिम्मेदार मानते थे। वे हिन्दू राष्ट्रवादी तो थे ही, इसके साथ ही साथ वे भारतीय राजनीति के पुरोधा एवं भारतीय राजनीति के चाणक्य भी थे। उनकी कार्यक्षमता और परिपूर्णता के गुणों से प्रभावित होकर डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी बड़े गर्व से सम्मानपूर्वक कहते थे कि- 'यदि मेरे पास दो दीनदयाल हों, तो मैं भारत का राजनीतिक चेहरा बदल सकता हूं।' विलक्षण बुद्धि, सरल व्यक्तित्व एवं नेतृत्व के अनगिनत गुणों के स्वामी पं. उपाध्याय देश सेवा के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। उन्होंने कहा था कि 'हमारी राष्ट्रीयता का आधार भारतमाता है, केवल भारत ही नहीं। माता शब्द हटा दीजिए तो भारत केवल जमीन का टुकड़ा मात्र बनकर रह जाएगा।'

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 7, Issue 4, July 2020 ||

पं. दीनदयालजी को उनकी जो बात उन्हें सबसे अलग करती है तो वह है उनकी सादगीभरी जीवनशैली, सरलता एवं निरंहकारिता। इतना बड़ा नेता होने के बाद भी उन्हें जरा सा भी अहंकार नहीं था। सीमित साधनों में अद्भुत, जटिज एवं निराले कामों को अंजाम देना हो तो उनसे सीखना चाहिए। पंडित उपाध्याय की गणना भारतीय महापुरूषों में इसलिये नहीं होती है कि वे किसी खास विचारधारा के थे बल्कि इसलिये होती है कि उन्होंने किसी विचारधारा या दलगत राजनीति से परे रहकर राष्ट्र को सर्वोपरि माना। पंडितजी का जीवन हमें यह हिम्मत देता है - रख हौंसला, वो मंजर भी आयेगा, प्यासे के पास चलकर समंदर भी आयेगा।' वे महान चिंतक एवं विचार मनीषी थे। उन्होंने भारत की सनातन विचारधारा को युगानुकूल रूप में प्रस्तुत करते हुए देश को एकात्म मानव दर्शन जैसी प्रगतिशील विचारधारा दी। उन्होंने एकात्म मानववाद के दर्शन पर श्रेष्ठ विचार व्यक्त करते हुए साम्यवाद और पूंजीवाद, दोनों की समालोचना की। एकात्म मानववाद में मानव जाति की मूलभूत आवश्यकताओं और सृजित कानूनों के अनुरूप राजनीतिक कार्रवाई हेतु एक वैकल्पिक सन्दर्भ दिया गया है।

एकात्म मानववाद के प्रणेता पंडित उपाध्याय का मानना था कि अपनी सांस्कृतिक संस्कारों की विरासत के कारण भारतवर्ष विश्व गुरु के स्थान को प्राप्त करेगा। पं. दीनदयाल द्वारा दिया गया मानवीय एकता का मंत्र हम सभी का मार्गदर्शन करता है। उन्होंने कहा था कि मनुष्य का शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा ये चारों अंग ठीक रहेंगे तभी मनुष्य को चरम सुख और वैभव की प्राप्ति हो सकती है। मानव की इसी स्वाभाविक प्रवृति को पं. उपाध्याय ने एकात्म मानववाद की संज्ञा दी। जी-20 की अध्यक्षता करते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने उन्हीं से प्रेरणा लेकर समूची दुनिया को वसुधैव कुटुम्बकम का महान् मंत्र दिया जिससे दुनिया के शक्तिशाली देश भी अभिप्रेरित हुए हैं। भारतीय तात्विक सत्यों का ज्ञान देश और काल से स्वतंत्र है। यह ज्ञान केवल हमारी ही नहीं वरन पूर्ण संसार की प्रगति की दिशा निश्चित करेगा। पंडितजी का ''चरैवेति-चरैवेति'' के प्रतीक पुरूष से भरा जीवन उत्साह देता है- थक कर न बैठ, ऐ मंजिल के मुसाफिर, मंजिल भी मिलेगी, और मिलने का मजा भी आयेगा।' लोकतंत्र, समानता, राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा विश्व शांति परस्पर संबद्ध कल्पनाएं हैं। किंतु पाश्चात्य राजनीति में इनमें कई बार टकराव हुआ है। समाजवाद और विश्व-शासन के विचार भी इन समस्याओं के समधान के प्रयत्न से उत्पन्न हुए हैं पर वे कुछ नहीं कर पाए। उलटे मूल को धक्का लगाया है और नई समस्याएं पैदा की हैं।

दीनदयालजी की दृष्टि में विश्व का ज्ञान हमारी थाती है। मानवजाति का अनुभव हमारी संपति है। स्व के साक्षात्कार के बिना न तो स्वतंत्रता सार्थक हो सकती और न वो कर्म चेतना ही जागृत हो सकती है, जिसमें परावलंबन और पराभूति का भाव न होकर स्वाधीनता, स्वेच्छा और स्वानुभवजनित सुख हो। विज्ञान किसी देश विशेष की बपौती नहीं। वह हमारे भी अभ्युदय का साधन बनेगा। विश्व-प्रगति के हम केवल द्रष्टा ही नहीं, साधक भी हैं। अतः जहां एक ओर हमारी दृष्टि विश्व की उपलब्धियों पर हो, वहीं दूसरी ओर हम अपने राष्ट्र की मूल प्रकृति, प्रतिभा एवं प्रवृत्ति को पहचानकर अपनी परंपरा, संस्कृति और परिस्थिति के अनुरूप भविष्य के विकास-क्रम का निर्धारण करने की अनिवार्यता को भी न भूलें। अज्ञान, अभाव तथा अन्याय की परिस्थितियों को समाप्त करने और सुदृढ़, समृद्ध, सुसंस्कृत एवं सुखी राष्ट्र-जीवन का शुभारंभ सबके द्वारा स्वेच्छा से किए जाने वाले कठोर श्रम तथा सहयोग की आवश्यकता पर वे बल देते हैं। यह महान कार्य राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक नए नेतृत्व की अपेक्षा रखता रहा, भारतीय जनसंघ का जन्म इसी अपेक्षा को पूर्ण करने के लिए हुआ है।

दीनदयाल उपाध्याय मूल्यों एवं राष्ट्रीय भावना से जुड़े विचारक एवं लेखक थे, उन्होंने नाटक 'चंद्रगुप्त मौर्य' और हिन्दी में शंकराचार्य की जीवनी लिखी। उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ. हेडगेवार की जीवनी का मराठी से हिंदी में अनुवाद किया। उनकी अन्य प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों में 'सम्राट चंद्रगुप्त', 'जगतगुरू शंकराचार्य', 'अखंड भारत क्यों हैं', 'राष्ट्र जीवन की समस्याएं', 'राष्ट्र चिंतन' और 'राष्ट्र जीवन की दिशा' आदि हैं। पंडित दीनदयाल कहते हैं कि विश्व को भी यदि हम कुछ सिखा सकते हैं तो उसे अपनी सांस्कृतिक सहिष्णुता एवं कर्तव्य-प्रधान जीवन की भावना की ही शिक्षा दे सकते हैं। आपके विचारों के भाव इन पंक्तियों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं- काली रात नहीं लेती है नाम ढलने का, यही तो वक्त है 'सूरज' तेरे निकलने का।' आज पंडित उपाध्याय के सपनों का समाज बन रहा है, वह सूरज उदितोदित है, यह अच्छी बात है कि प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी पंडित उपाध्याय के एकात्म मानव-दर्शन एवं अंत्योदय के सपने को साकार कर रहे हैं। उनका सपना था कि समाज के अंतिम व्यक्ति को अपने जीवन पर गर्व हो और वह तेजस्वी स्वर में कह सके कि मुझे भारतीय होने पर गर्व है।[8]

निष्कर्ष

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का जन्म 25 सितम्बर 1916 को मथुरा में हुआ था। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के पिता श्री भगवती प्रसाद उपाध्याय और माता श्रीमती रामप्यारी एक विचारों वाली महिला थीं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के पिता भारतीय रेलवे में नौकरी करते थे। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने कानपुर विश्वविद्यालय से बी0ए0 किया था। पंडित जी ने कभी नौकरी नहीं की और अपना सारा जीवन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में लगा दिया। पंडित जी अपने छात्र जीवन में ही इस आन्दोलन में चले गये थे। बाद में पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी राष्ट्रीय स्वयं सेवक के प्रचार-प्रसार करने लगे।

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 7, Issue 4, July 2020 ||

सन 1951 में दीनदयाल जी अखिल भारतीय जनसंघ के बनने पर उसके संगठन मंत्री बनाये गये। महामंत्री के तौर पर पार्टी में लगभग 15 सालो तक इस पद पर रहकर अपने इस पार्टी को एक मजबूत आधारषिला दी। उसके बाद कालीकट के अधिवेशन में 1967 को अखिल भारतीय जनसंध ने नये निर्वाचित अध्यक्ष चुने गए पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी एक साधारण किस्म के आदमी थे। 11 फरवरी 1968 को एक रेल यात्रा के दौरान कुछ असामाजिक तत्वों ने रात को मुगलसराय उत्तर प्रदेश के आस-पास उनकी हत्या कर दी । लोग कहते है कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक को एक ही बैठक में लिख लिया था।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक भारतीय विचारक, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, पत्रकार व इतिहासकार थे। उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष बने।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की प्रमुख रचनाएँ

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की कुछ प्रमुख पुस्तकें / प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं:

1. दो योजनाएं,
2. राजनीतिक डायरी,
3. भारतीय अर्थनीति का अवमूल्यन,
4. सम्राट चन्द्रगुप्त,
5. जगदगुरू शंकराचार्य,
6. एकात्म मानववाद
7. राष्ट्र जीवन की दिषा

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानव दर्शन

पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा स्थापित एकात्म मानव दर्शन की अवधारणा पर आधारित राजनीतिक दर्शन भारतीय जनसंघ की देन है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार एकात्म मानव दर्शन प्रत्येक मनुष्य के शरीर मन बुद्धि और आत्मा का एक एकीकृत कार्य है। उन्होंने कहा कि एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में भारत पश्चिमी अवधारणाओं जैसे व्यक्ति वाद लोकतंत्र समाजवाद साम्यवाद और पूंजीवादी पर निर्भर नहीं हो सकता है। उनका विचार था कि भारतीय मेधा पश्चिमी सिद्धांत और विचारधाराओं से घुटन महसूस कर रही है। [9,10,11]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानव दर्शन सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक दोनों ही „ष्टि से एक सर्वकालिक एवं सार्वभौमिक जीवन दर्शन है। दर्शन के अनुसार मानव संपूर्ण ब्रह्मांड के केंद्र में रहकर एक सर्पिलाकार मंडल आकृति के रूप में अपने स्वयं के अस्तित्व क्रमश: परिवार, समुदाय, समाज, राष्ट्र एवं विश्व के प्रति अपने बहुपक्षीय उत्तरदायित्वों का निर्वहन करता हुआ प्रकृति के साथ एकीकृत हो जाता है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार यह दर्शन कोई ऐसा विचार या विग्रह नहीं है जो एक पुरुष दार्शनिक चिंतन तक सीमित होकर मात्र शास्त्रार्थ का विषय बन कर सामान्य व्यक्ति की समझ से बाहर हो जाता है। यह दर्शन विश्व गुरु भारत की वैदिक संस्"ति के विज्ञान समस्त जीवन सूत्रों पर आधारित भौतिक चिंतन है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने भी इतिहास के सांस्"तिक सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक घटनाक्रम का विस्तृत एवं ग्रहण अनुशीलन करते हुए तत्कालीन वैश्विक पटल में व्याप्त आपसी वैमनस्य शांति एवं सतत संघर्ष के संदर्भ में एक ऐसा व्यवहारिक जीवन दर्शन प्रतिपादित किया है जो कि समस्त वैयक्तिक राष्ट्रीय व वैश्विक जटिलताओं के सार्थक व सकारात्मक समाधान हेतु व्यावहारिक नीतियों हेतु मार्गदर्शन करता है।

मानव की स्थिति और प्रगति

मानव की स्थिति और प्रगति उसकी जयिष्णु और सहिष्णु प्रवृत्ति के सामंजस्य पर ही निर्भर है। प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा दूसरों पर प्रभाव डालने की, उन पर विजय पाने की रहती है तथा अपने व्यक्तित्व को प्रभावी एवं विजयी बनाने के लिए वह सतत् प्रयत्नशील रहता है। उसकी दौड़-धूप इसलिए होती रहती है। किंतु इस प्रकार की प्रबल आकांक्षा का परिणाम दूसरों का विनाश एवं इस प्रकार पंडित दीनदयाल उपाध्याय के द्वारा होने वाले सत्य के आविष्कार की संभावना भी समाप्त न हो इसके लिए मानव ने यह भी आवश्यक समझा है कि वह दूसरों के मतों का आदर करें तथा उसे सत्य मानकर चले। इस भावना ने ही सहिष्णुता की प्रवृत्ति को जन्म दिया है।

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 7, Issue 4, July 2020 ||

विश्व में भारतवर्ष अपनी चरम कोटि की सहिष्णुता की भावना के लिए प्रसिद्ध है। पश्चिम में सहिष्णुता की भावना को बहुत ही निकट भूत में अनुभव किया है तथा जनतंत्र के नाम पर उसका विकास करने का प्रयत्न किया है। फिर भी उसके जीवन में असहिष्णुता इतनी समा गई है कि सहिष्णुता का राग अलापते रहने पर भी किसी न किसी प्रकार असहिष्णुता प्रकट हो ही जाती है। अंग्रेजी, फ्रांसीसियों और डचों की साम्राज्यवादी भावनाएँ, एशिया के लोगों पर किए गए अत्याचार, ईसाई धर्म के अतिरिक्त सब धमोर्ं को ओछा मानकर पंडित दीनदयाल उपाध्याय के साथ किया हुआ व्यवहार, अंग्रेजों का श्वेत मानव का बोझा अफ्रीका में हब्शियों एवं अन्य अश्वेतों के लिए बनाए गए कानून, अमेरिका में नीग्रों एवं रेड इंडियनों के प्रति किया गया बरताव तथा जर्मनी, इटली, रूस आदि देशों में उत्पन्न होनेवाली फासिस्ट मनोवृत्ति एवं हर पच्चीस वर्ष के बाद युद्ध इसी असहिष्णु मनोवृत्ति के परिचायक हैं।

आज भी पश्चिम में अपने से इतर जातियों के प्रति सम्मान और श्रद्धा का भाव उत्पन्न नहीं हुआ है। आज भी वहाँ के विद्वान यूरोप और अमेरिका को ही विश्व का केंद्र मानकर सारे संसार को उसके हितों के अनुसार नचाना चाहते हैं।

भारत में उसके विपरीत बहुत पहले ही सहिष्णुता की भावना का उदय हो चुका था। दो हजार मील लंबे और दो हजार मील चौड़े भारत की विविध रूपा प्र"ति के अंतर के सत्य का साक्षात्कार कराया। हमने विविधता में एकता की अनुभूति को और उसके परिणामस्वरूप सहिष्णुता की भावना को जन्म दिया। फलत: ज्ञान, कर्म और भाव तीनों ही क्षेत्रों में हमने अपनी सहिष्णुता की मनोवृत्ति का परिचय दिया है। 'एकं सद्विग्रा बहुधा वदन्ति' का आदर्श समक्ष रखकर ज्ञान के क्षेत्र में निष्काम कर्मयोग का सिद्धांत प्रतिपादन करके कर्म के क्षेत्र में तथा एक ही ब्रह्म के विविध रूप भिन्न देवताओं को मानकर भक्ति के द्वारा भाव के क्षेत्र में सहिष्णुता की भावना का विकास किया है। सहिष्णुता हमारे जीवन का अंग बन गई है। आज पश्चिम का जीवन और उसका इतिहास ही प्रमुखता: अपने सम्मुख होने के कारण हमको अपनी सहिष्णुता की सहज प्रवृत्ति पर अभिमान होने लगा है। इतना ही नहीं सहिष्णुता की भावना पर इतना जोर दिया जाने लगा है कि जीवन की दूसरी आवश्यक प्रवृत्ति अर्थात् जयिष्णु प्रवृत्ति की ओर हमारा दुर्लक्ष्य हो गया है। फलत: सहिष्णुता का अर्थ हो गया है, महत्वाकांक्षा से हीन, दुनिया को हर जाति के सामने झुकते जाना, अपने स्वत्व एवं जीवन को बिलकुल धूल में मिला देना। युद्ध चाहे वह आत्मरक्षार्थ ही क्यों न हो हमारे लिए पाप कार्य हो गया है। सिद्धांत के ऊपर इतना आग्रह हो गया है कि हम को भी चिंता नहीं कर रहे हैं।[10,11]

वास्तव में सहिष्णुता के समान ही जयिष्णुता का सिद्धांत भी आवश्यक है। यदि यह कहा जाए कि जयिष्णुता अधिक आवश्यक है तो अनुचित नहीं होगा। बिना जयिष्णुता की भावना के कोई समाज न तो जीवित ही रह सकता है और न वह अपने जीवन का विकास ही कर सकता है। कोई भी व्यक्ति अथवा समाज केवल श्वासोच्छवास के लिए जीवित नहीं रहता, अपितु वह किसी आदर्श के लिए जिंदा रहता है तथा आवश्यकता पढ़ने पर उस आदर्श की रक्षा के लिए अपने जीवन की परिसमाप्ति भी श्रद्धेय पंडित दीनदयाल उपाध्याय के कर देता है। आदर्शवादी व्यक्तियों ने ही सब प्रकार की कठिनाइयाँ झेलकर भी संसार को आगे बढ़ाया है। जिनके जीवन में अपने आदशोर्ं को विजयी बनाने की महत्त्वाकांक्षा है। वे ही संसार के निराशामय वातावरण से ऊपर उठकर कुछ कर पाते हैं। तथा दूसरों के लिए प्रकाश पुंज बनाकर मार्ग दर्शक हो जाते हैं। दुनिया के नए-नए देशों की खोज करनेवाले, प्र"ति के गुहयतम सिद्धांतों को ढूँढ़ निकालनेवाले, ब्रह्म और जीवन के अभेद का साक्षात्कार करनेवाले, दु:खी मानवों को शांति और सत्य का उपदेश देनेवाले, सबके सब अपने जीवन में एक महत्त्वाकांक्षा लेकर आए और उसे प्राप्त करने के निमित्त ही जीवन भर प्रयत्न करते रहे। भारतवर्ष ने इस विजिगोषु वृत्ति का महत्त्व सदा ही समझा है और इसलिए विजयादशमी के त्योहारों की योजना की गई है।

विजयादशमी हमारी विजयों का स्मारक तथा भावी विजयों का प्रेरक है। यह दिन हमको प्रतिवर्ष यादगार दिलाने आता है कि हमें दुनिया में विजय करनी है। हम पराजय के लिए अथवा उदासीन बनकर केवल अपने जीवन को सीमित करने के लिए नहीं, अपितु विलय के लिए पैदा हुए हैं।

विजय के लिए सीमोल्लंघन आवश्यक है। आज हमने अपने जीवन की सीमाएँ बना रखी हैं। स्वार्थ और अज्ञान के संकुचित दायरे में हमने कूपमंडूक के समान अपने जीवन को सीमित कर दिया है। हमें अपनी सीमाएँ तोड़नी होंगी। जो इन सीमाओं के बाहर नहीं जा सकता वह विजय भी नहीं प्राप्त कर सकता। सीमोल्लंघन और विजय केवल सेना और शास्त्रास्त्रों से सज्ज होकर शत्रु के राज्य में कूच करके परास्त करने से ही नहीं होती अपितु विचारों और भावनाओं के जगत् में भी यह विजय प्राप्त की जा सकती है। इस जगत् में भी हमारे अनेक शत्रु हैं जिनको पराजित करके हम अपनी विजय मना सकते हैं। दुर्गा, रघु, राम और सिद्धार्थ के जीवन की घटनाएँ विजयादशमी के साथ संबद्ध हैं। इनमें से प्रत्येक ने विभिन्न क्षेत्रों की विभिन्नता होते हुए भी उनकी प्रवृत्ति की एकता स्पष्ट है। अत: हमारे जीवन में उनकी सी एकध्येयनिष्ठा तथा अपने जीवन से बाहर निकालकर आदर्श को प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षा रही तो हम भी जीवन में विजय प्राप्त कर सकेंगे तथा सच्चे अथोर्ं में विजयादशमी मना सकेंगे।[12]

संदर्भ

1: दीनदयाल उपाध्याय: राष्ट्रचिन्तन
2: एकात्म दर्शन: राष्ट्रजीवन के अनुकूल अरचना
3: भारतीय जनसंघ: सिद्धान्त और नीति
4: पॉलिटिकल डायरी (हिन्दी)" स्वभाषा – सुभाषा
5: विचार- वीथी: मिशनरी और शिक्षा संस्थाएं: पाञ्चजन्य

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 7, Issue 4, July 2020 ||

6: Deendayal Upadhyaya, Teachers Day, Some Thoughts, Organiser, 17 September 1962.
7: दीनदयाल उपाध्याय, चतुर्थ योजना: उद्देश्य और संभावनाएं; पांचजन्य, 08 अप्रैल 1966
8: डॉ. महेश चन्द्र शर्मा – दोन दयाल उपाध्याय कर्तृत्व एवं विचार
9:गर्ग, पंकज कुमार:2006 ,(मार्च-अप्रैल0),अंक-69,"दयाल पत्रिका",पं0 दीनदयाल उपाध्याय संस्थान (रजि0), मेरठ-250001
10:जैन किषल चन्द्र:1976 "शैक्षिक संगठन प्रषासन एवं पर्यवेक्षण," राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ एकेडमी जयपुर
11:जोगेन्द्र भाई जीत:1977 "शैक्षिक एवं विद्यालय प्रशासन", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-282002
12:बलवन्त नारायण:1991, "पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्षन",खण्ड-6, सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवालान, नईदिल्ली-110055